6570

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ५ अंक ६ : जनवरी १९८२

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram: PEARLMOON

Telephone: 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ५ : अंक ६

जनवरी १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

विदेशों में जैन धर्म २६१

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २६४

जम्बुकुमार २७२

जैन कोश साहित्य २७६

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८७

जैन देवी, देवगढ़, मध्यप्रदेश

विदेशों में जैन धर्म

डा० ज्योति प्रसाद जैन

जैनधर्म एक ऐसी सनातन धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है जो शुद्ध भारतीय होने के साथ ही प्रायः सर्वप्राचीन जीवंत परम्परा है। इसके उद्गम और विकासारम्भ के बीज सुदूर अतीत प्रागैतिहासिक काल में निहित है। मानवीय जीवन में कर्मयुग के प्रारम्भ के साथ ही साथ इस सरल स्वभाव आत्म-धर्म का भी आविर्भाव हुआ था। वर्तमान कल्पकाल में इसके आदि पुरस्कर्त्ता आदिपुरुष स्वयंभू प्रजापति ऋषभदेव हैं, जो चौबीस निर्ग्रन्थ श्रमण तीर्थंकरों में सर्वप्रथम हैं। इनका समय अनुमानातीत है। आधुनिक खोजों के आलोक में यही कहा जा सकता है कि तथाकथित आर्य-वैदिक सभ्यता के पूर्ववर्ती प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी सभ्यता के उदय से भी पूर्व ऋषभादि कई तीर्थङ्कर हो चुके थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अवशेषों में कायोत्सर्ग-स्थित वृषभलांछन उन दिगम्बर योगीराज की उपासना प्रचलित रहने के संकेत मिले हैं। ऋग्वेदादि में भी उनके अनेक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष उल्लेख प्राप्त होते हैं। वैदिक संस्कृति के साथ इस आर्हत या श्रमण संस्कृति का दीर्घकालीन संघर्ष एवं आदान-प्रदान चला। और आधुनिक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से भारतवर्ष का इतिहास जब से भी व्यवस्थित रूप में मिलना प्रारम्भ होता है, अर्थात् रामायण तथा महाभारत में वर्णित घटनाओं के युगों से, तब से तो निरन्तर ब्राह्मण वैदिक परम्परा के साथ-साथ श्रमण जैन परम्परा का अस्तित्व इतिहाससिद्ध है। पारस्परिक संघर्ष, उत्थान-पतन, प्रचार-प्रसार का युगानुसार अल्पाधिक्य रहा। ऐसे भी समय आये जब जैनधर्म महादेश भारतवर्ष की सीमाओं का अतिक्रमण करके उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व के भारतीय प्रदेशों में भी प्रविष्ट एवं प्रसारित हुआ। स्वयं इस देश के तो प्रायः सभी भागों में प्राप्त उसके अवशेष वहाँ उसके अस्तित्व के तथा कभी कम और अधिक प्रभाव रहने के साक्षी हैं। जैन संस्कृति ने प्राचीन भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहते हुए, अपने स्वतन्त्र अस्तित्व एवं मौलिकता को भी बहुत कुछ अक्षुण्ण बनाये रखने में सफलता प्राप्त की है। साथ ही, इसने भारतीय साहित्य, कला, स्थापत्य, ज्ञान-विज्ञान को अमूल्य देनें प्रदान करके समग्र भारतीय संस्कृति को पर्याप्त समृद्ध किया है और अपने विशिष्ट आचार-विचार एवं जीवन पद्धति से भारतीय जनजीवन का उन्नयन करने में स्तुत्य योग दिया है।

प्रायः कह दिया जाता है कि जैनधर्म भारत के बाहर कभी गया ही नहीं, किन्तु यह बात सत्य नहीं है। यह अवश्य है कि तप, त्याग एवं संयम पर

आधारित, निवृत्ति एवं अहिंसा प्रधान अन्तर्मुखी आत्म साधना में लीन जैन साधक का लक्ष्य ख्याति-लाभ, पूजा अथवा आत्मप्रचार या धर्मप्रचार में कभी नहीं रहा। जैन साधुचर्या के नियमों की कठोरता भी इस दिशा में बाधक रही। अतएव जैन धर्म विदेशों में बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि धर्मों की भाँति कभी भी संगठित प्रयत्नपूर्वक प्रचारित नहीं हुआ। तथापि जैन धर्म के प्रकाश एवं प्रभाव ने इस महादेश की सीमाओं का अतिक्रमण किया है, इस तथ्य के संकेत भी उपलब्ध है।

मेजर जनरल जे० फर्लांग, कर्नल जेम्स टाड आदि कई प्रारम्भिक प्राच्यविदों का अनुमान है कि जैनधर्म किसी समय यूरोप के स्केण्डीनेविया जैसे दूरस्थ प्रदेशों, तुर्की तथा उत्तरी मध्य एशिया के क्षेत्रों तक पहुँचा था। चौथी शती ईसापूर्व में यूनानी सम्राट सिकन्दर महान् तक्षशिला से एक जैन सन्त को अपने साथ काबुल ले गया था, जहाँ उक्त सन्त ने सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया था। ईस्वी सन् के प्रारम्भ के लगभग मड़ोच के एक श्रमणाचार्य का महानगरी रोम में जाना और वहाँ समाधिपूर्वक चितारोहण करना पाया जाता है। दक्षिण एवं पूर्व में वृहत्तर भारत के सिंहल, बर्मा, स्याम, कम्बोज, चम्पा, श्रीविजय आदि प्रदेशों एवं द्वीपों में भारतीय संस्कृति का जो प्रसार हुआ, उसमें भी जैन व्यापारियों एवं गृहस्थ जैन विद्वानों का कुछ न कुछ योग अवश्य रहा है, ऐसे उक्त देशों के भारतीय कृत राज्यों के इतिहास तथा उनके देवायतन आदि स्मारकों के अध्ययन से ज्ञात होता है।

मध्य एशिया की फरात नदी की घाटी के ऊपरी भाग में एक भारतीय उपनिवेश ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में विद्यमान था। लगभग पांच सौ वर्ष पश्चात् पोप ग्रेगरी ने भयंकर आक्रमण करके उसे ध्वस्त कर दिया था। अनुश्रुति है कि खोतान के उक्त भारतीय उपनिवेश की स्थापना का श्रेय मौर्य सम्राट अशोक के पुत्र राजकुमार कुणाल को है। यह राजकुमार जैन धर्मावलम्बी था और इसी का पुत्र प्रसिद्ध जैन सम्राट सम्प्रति था। मध्य एशिया में सम्भवतया वही सर्वप्रथम भारतीय उपनिवेश थां। फिर तो चौथी शती ई० के प्रारम्भ तक कश्मीर से लेकर चीन की सीमा पर्यन्त समस्त तुर्कीस्तान का प्रायः पूर्णतया भारतीयकरण हो चुका था। उसके दक्षिणी भाग में देश-देश (काश्मीर) चीवकुक (वारकन्द) खोतम्न (खोतान) और चलन्द (सान-सान) नाम के तथा उत्तरी भाग में भरक कुचि अग्निदेश और काओचंग नाम के भारतीय राज्य थे। इन सबमें उत्तर का कुचि और दक्षिण का खोतान सर्वाधिक महत्वपूर्ण और भारतीय संस्कृति के सर्वमहान प्रसार केन्द्र थे। इन

उपनिवेशों की स्थापना में निर्ग्रन्थ (जैन) साधुओं और बौद्ध भिक्षुओं का ही अधिक योगदान था। कालान्तर में निर्ग्रन्थों का विहार उक्त क्षेत्रों में शिथिल होता गया और बौद्धों का सम्पर्क एवं आवागमन बढ़ता गया, अतः गुप्तकाल के उपरान्त बौद्धधर्म ही वहाँ का प्रधान धर्म हो गया, तथापि चौथी से सातवीं शती ई० पर्यन्त भारत में आने वाले फाहियान, ह्वेनषांग, इत्सिंग आदि चीनी यात्रियों के वृत्तान्त से स्पष्ट है कि उनके समय में भी उक्त प्रदेशों में निर्ग्रन्थ मुनियों का अस्तित्व था। कुछ जैन मूर्तियाँ एवं अन्य जैन अवशेष भी वहाँ यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं। साधक के रूप में तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का विहार भी उक्त देशों में हुआ प्रतीत होता है। अनेक प्राच्यविदों एवं पुरातत्वज्ञों का मत है कि प्राचीन काल में जैन धर्म भी इन प्रदेशों में पहुँचा था। तिब्बत, कपिशा (अफगानिस्तान), गान्धार (तक्षशिला और कंधार), ईरान, इराक, अरब, तुर्की, मध्य एशिया आदि में जैन धर्म के किसी न किसी रूप में किसी समय पहुँचने के चिह्न प्राप्त होते हैं। चीन देश के ताओ आदि प्राचीन धर्मों पर जैन धर्म का प्रभाव लक्षित है और चीन के उत्तर कालीन बौद्ध साहित्य में भी अनेक जैन सूचक संकेत मिलते हैं। जापान के जैन सम्प्रदाय का सम्बन्ध भी कुछ लोग जैनधर्म से जोड़ते हैं। प्राचीन यूनान छेपाइये गोरस जैसे शाकाहारी आत्मधर्मी दार्शनिकों पर भी जैन प्रभाव लक्ष्य या अलक्ष्य रूप में रहा प्रतीत होता है। इसी प्रकार ईसाई मत प्रवर्त्तक ईसामसीह भी जैन विचारधारा से अवश्य प्रभावित हुए थे, ऐसा स्व० बैरिस्टर चम्पत जी ने सिद्ध किया था।

उपरोक्त अधिकांश स्थानों में जैनों की छोटी-मोटी बस्तियाँ भी मध्यकाल तक रही प्रतीत होती हैं। इधर आधुनिक युग में दक्षिण-अफ्रीका, नैरोबी आदि प्रदेशों में जैनों की अच्छी संख्या रहती आई है। पूर्व के फिजी आदि द्वीपों में भी कुछ जैन हैं। यूरोप के विभिन्न देशों में व्यापार-व्यवसाय अथवा विद्यार्जन के बहाने अनेक जैन रहते रहे हैं। यही स्थिति अमेरिका की है। वहाँ तो पिछले दो तीन दशकों में जैन प्रवासियों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है।

वर्तमान शती के प्रारम्भिक दशकों में वीरचन्द्र राघव जी गांधी, पं० लालन, बैरिस्टर जगमन्दरलाल जैनी, बैरिस्टर चम्पत राय, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद प्रभृति विद्वानों ने विदेशों में धर्मप्रचार किया है। गत दशकों में पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर, कान्हजी स्वामी, मुनि सुशील कुमार, मूडबिद्री एवं श्रवणबेलगोल के भट्टारक द्वय प्रभृति महानुभावों ने इस कार्य को प्रगति दी है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

संचित पुण्यबल से धनश्रेष्ठी का जीव उसी मुहूर्त्त में दुर्लभ ईशान कल्प में अश्व के समान वेग से जा पहुँचा एवं वहाँ श्रीप्रभ विमान में देव शय्या पर उसी प्रकार उत्पन्न हो गया जैसे मेघ में विद्युत उत्पन्न होती है। वहाँ दिव्य आकृति, समचतुरस्र संस्थान, सप्तधातु रहित शरीर, शिरीष पुष्प-सी कोमलता, दिक् समूह के अन्तर्भाग को देदीप्यमान करने जैसी कान्ति, वज्र सी काया, अदम्य उत्साह, पुण्य के सर्वलक्षण, इच्छानुरूप रूप, अवधिज्ञान, समस्त विज्ञान में पारंगता, अणिमादि अष्ट-सिद्धि की प्राप्ति, निर्दोषता और वैभव इस प्रकार समस्त गुण सहित ललितांग नामक सार्थकनामा देव हुए। उनके पाँवों में रत्न मंजीर, कमर में कटिभूषण, हाथ में कंकण, भुजा में भुजबन्ध, वक्षदेश पर हार, गले में ग्रैवेयक, कानों में कुण्डल, सिर पर पुष्पमाला और मुकुटादि भूषण, दिव्य वस्त्र और समस्त अंग का भूषण रूप यौवन उत्पन्न होने के साथ-साथ मिला। उसी समय दिक् समूह को प्रतिध्वनित करती हुई देव दुंदुभी बजी। मंगल पाठक भाट बोल उठे—'हे देव, जगत को आनन्दित करिए, जयी बनिए।' गीतवादित्र से ध्वनित, चारणादि के कोलाहल से मुखरित यह विमान जैसे अपने स्वामी को प्राप्तकर आनन्द से गूँज उठा है। ललितांग उसी प्रकार उठ बैठे जिस प्रकार सोया हुआ मनुष्य नींद टूटने पर उठ बैठता है। मंगल पाठकों की उपरोक्त उक्ति सुनकर वे सोचने लगे—यह इन्द्रजाल है? स्वप्न है या माया? क्या है यह सब? मेरे लिए ये नृत्य गीत क्यों हो रहे हैं? ये विनीत लोग मुझे प्रभु कहने को आतुर क्यों है? और इस लक्ष्मी मन्दिर रूप आनन्द के धाम स्वरूप निवास योग्य प्रिय और रमणीय भवन में मैं कहाँ से आया हूँ?

उनके मन में जब यही सब भाव उदित हो रहे थे उसी समय प्रतिहारी उनके निकट आकर युक्त कर से बोला—'देव, आपके जैसे प्रभु को प्राप्त कर हम सनाथ हो गए हैं, धन्य हो गए हैं। आप अपने विजयी सेवकों पर कृपा कर अमृत वर्षण कीजिए। यह ईशान नामक द्वितीय देवलोक है, अचंचल लक्ष्मी का निवास रूप और सर्व सुखों का आकर है। यहाँ आप जिस विमान को सुशोभित कर रहे हैं उसका नाम है श्रीप्रभ। पुण्यबल से आपने इस स्वर्ग

को प्राप्त किया है और ये सब लोग सामानिक देवता एवं आपकी सभा के अलंकार स्वरूप हैं। इनके साथ इस विमान में आप एक होकर भी अनेक रूपों में प्रतिभासित हो रहे हैं। हे देव! इन्हें त्रायस्त्रिंसक पुरोहित देवता कहा जाता है। ये मन्त्र के स्थान रूप एवं आपकी आज्ञा-पालन में सदैव तत्पर हैं। आप इन्हें समयोचित आदेश दीजिए।

"और ये हैं इस परिषद् के नर्म सचिव या विदूषक। ये आनन्द क्रीड़ा में प्रधान हैं। लीला-विलासमय गल्प कर ये आपका मनोरंजन करेंगे।

"ये हैं आपके शरीर रक्षक देवता जो कि सर्वदा कवच और छत्तीस प्रकार के प्रहरण धारण कर प्रभु रक्षा के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

"और ये हैं आपके नगर रक्षणकारी लोकपाल देवता।

"ये हैं आपकी सेना वाहिनी के चतुर सेनापतिगण।

"ये हैं पुर अथवा देशवासी प्रकीर्णक देवता जो आपकी प्रजातुल्य हैं। आपके सामान्य आदेश को भी ये मस्तक पर धारण करते हैं।

"ये होते हैं अभियोग्य देवता जो दास की भाँति आपकी सेवा करेंगे।

"और ये हैं किल्विषक देवता जो आपके मलिन कर्म करेंगे।

"ये रहा आपका रत्न जड़ित प्रासाद, जो कि सुन्दरी रमणीपूर्ण अंगनयुक्त व चित्ततोषकारी है।

"ये सब हैं स्वर्ण-कमल की खान-रूप वापी समूह।

"रत्न एवं स्वर्ण शिखर युक्त ये आपके क्रीड़ा पर्वत हैं।

"आनन्द दानकारी और निर्मल जल से पूर्ण ये क्रीड़ा तटिनी हैं।

"नित्य पुष्प और फलदानकारी ये क्रीड़ा उद्यान हैं।

"और स्वकान्ति से दिक् मुख को प्रकाशित करने वाला सूर्य मण्डल के समान स्वर्ण और माणिक्य रचित यह आपका सभा-मण्डप है।

"ये वारांगनाएँ चामर, पंखा और दर्पण लेकर खड़ी रहती हैं। ये सब आपकी सेवा को ही महामहोत्सव समझती हैं।

"चार प्रकार के वाद्यों में प्रवीण ये गन्धर्वगण आपको संगीत सुनाने के लिए यहाँ उपस्थित हैं।"

प्रतिहारी से यह सब सुनकर ललितांग देव चेतना की उपयोग शक्ति के बल से एवं अवधि ज्ञान से स्वयं के पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार स्मरण करने लगे जैसे सब कुछ कल ही घटित हुआ हो।

मैं पूर्व जन्म में विद्याधर राजा था। मेरे धर्म-बन्धु स्वयंबुद्ध ने मुझे जिनधर्म का उपदेश दिया था। फलतः मैंने दीक्षा लेकर अनशन व्रत ग्रहण

किया था। उसी के कारण यह समस्त वैभव मैंने प्राप्त किया है। सचमुच धर्म का प्रभाव अचिन्त्य है।

पूर्वजन्म की कथा स्मरण कर उसी मुहूर्त्त में वहाँ से उठकर वे प्रतिहारी के कन्धों पर हाथ रखकर सिंहासन पर जा विराजे। उस समय चारों ओर उनकी जय ध्वनियाँ गूँज उठीं। देवताओं ने उनका अभिषेक किया। चामर व्यंजित होने लगे और गन्धर्वों ने मधुर स्वर से मंगल गीत गाना प्रारम्भ कर दिया।

तदुपरान्त भक्तिप्लुत मन से ललितांग देव वहाँ से उठे एवं चैत्य में जाकर शाश्वत अर्हत् प्रतिमाओं की पूजा की एवं तीन ग्राम और स्वर के साथ मधुर कण्ठ से मंगलमय गीत सहित विविध प्रकार के स्तोत्रों से जिनेन्द्रदेव की स्तुति की, ज्ञान के लिए प्रदीप रूप धर्म ग्रन्थ का पाठ किया और मण्डप के स्तम्भ में रक्षित अर्हतों की अस्थियों का पूजन-अर्चन किया।

तत्पश्चात् छत्र धारण करने के कारण पूर्णिमा के शशांक की भाँति दीप्यमान होकर उन्होंने क्रीड़ा भवन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने स्वयंप्रभा देवी को देखा जो निज प्रभा से विद्युतप्रभा को भी लज्जित कर रही थी। उसके हाथ, पाँव, मुख अत्यन्त कोमल थे। इसी कोमलता के कारण वह लावण्य सिन्धु स्थित कमल वाटिका-सी लग रही थी। अनुक्रम से स्थूल वर्तुल जंघाएँ ऐसी लग रही थीं मानो कामदेव ने वहाँ अपना मस्तक न्यस्त कर रखा है। स्वच्छ दुकूलों में आवृत नितम्बों के कारण वह ऐसी शोभायमान हो रही थी जैसे राजहंसों से परिव्याप्त तट से नदी शोभा पाती है। सुपुष्ट उन्नत स्तनभार वहन करने के कारण कृश उदर और कटि वज्र के मध्य से प्रतीत हो रहे थे। इससे उसका सौन्दर्य और अधिक प्रकाशित हो रहा था। उसका तीन रेखायुक्त सुस्वर कण्ठ कामदेव के जयघोष कारी शंख-सा लगता था। बिम्ब फल को तिरस्कृत करने वाले ओष्ठ और नेत्र रूप कमल की मृणालरूप नासिकाने उसे अपरूप सौन्दर्य प्रदान किया था। पूर्णिमाके द्विखण्डित चन्द्र की समस्त सौन्दर्य लक्ष्मी अपहरणकारी उसके सुन्दर स्निग्ध ललाट मन को मुग्ध कर रहा था। उसके कर्णयुगल कामदेव की हिन्दोल लीला को भी लज्जित कर रहे थे। उसकी भृकुटि पुष्पधन्वा के धनुष की शोभा को हरण करने वाली थी। मुखरूप कमल के पीछे गुंजायमान भ्रमरों की भाँति उसके केश थे स्निग्ध और कज्जल वर्ण के। समस्त अंग रत्न जड़ित भूषणों में वह संचारमान कामलता-सी लग रही थी। हजार हजार अप्सराओं से वेष्टित वह मनोहर पद्मानना बहु नदी वेष्टित गंगा की तरह प्रतिभासित हो रही थी।

ललितांगदेव को अपनी ओर आते देख स्वयंप्रभा देवी स्नेह से भरकर उठी और उनका सत्कार किया। तब श्रीप्रभ विमान के अधिपति ललितांगदेव स्वयंप्रभा को लेकर पर्यंक पर उपवेशित हुए। एक ही क्यारी में वृक्ष और लता जैसे शोभा पाती है उसी प्रकार वे दोनों शोभित होने लगे। एक शृंखल में बन्धे निविड़ अनुराग में दोनों का चित्त एक दूसरे में लीन हो गया। यहाँ प्रेम का सौरभ अविच्छिन्न है। उस श्रीप्रभ विमान में ललितांगदेव ने स्वयंप्रभा के साथ मर्म क्रीड़ा में दीर्घकाल व्यतीत किया जो कि मुहूर्त्त की भाँति व्यतीत हो गया। फिर जिस प्रकार वृक्ष से पत्ता झड़ पड़ता है उसी तरह आयु पूर्ण हो जाने से स्वयंप्रभा देवी ने उस विमान से च्युत होकर अन्य गति प्राप्त की। सत्य ही है आयुष्य पूर्ण होने पर इन्द्र को भी स्वर्ग से च्युत होना पड़ता है।

प्रिया के अभाव में ललितांगदेव इस प्रकार मूर्च्छित हो गए जैसे वे पर्वत से पतित हो गए हों या वज्र से आहत हो गए हों। कुछ क्षण पश्चात् जब उन्हें होश आया तो वे उच्च स्वर में क्रन्दन करने लगे। वन-उद्यान उनके मन को शान्त और वापी तड़ाग शीतल नहीं कर सके। न उन्हें क्रीड़ा-पर्वत पर शान्ति मिली न नन्दनवन उन्हें आनन्द दे सका। हाय प्रिये! हाय प्रिये! तुम कहाँ हो? ऐसा कहते हुए एवं समस्त जगत को स्वयंप्रभामय देखते हुए वे चारों ओर विचरण करने लगे।

उधर स्वयंबुद्ध मंत्री ने महाबल की मृत्यु से वैराग्य प्राप्त कर श्री सिद्धाचार्य नामक आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर ली। उसने दीर्घकाल तक अतिचारहीन मुनि धर्म पालन कर आयुष्य शेष होने पर ईशान देवलोक में इन्द्र के दृढ़धर्मा नामक सामानिक देवता के रूप में जन्म ग्रहण किया।

उस उदार बुद्धि सम्पन्न दृढ़धर्मा के मन में पूर्व भव के सम्बन्ध के कारण ललितांगदेव के प्रति बन्धुत्व भाव उत्पन्न हुआ। वह अपने विमान से ललितांग देव के निकट आया और उन्हें धैर्य प्रदान करने के लिए बोला—"हे महासत्व, आप स्त्री के लिए क्यों इतने व्याकुल हो गए हैं? धीर व्यक्ति तो स्वयं की मृत्यु के समय भी अधीर नहीं होते।" ललितांगदेव बोले—"हे बन्धु! यह तुम क्या कहते हो? निजप्राण वियोग का दुःख सहा जा सकता है किन्तु कान्ता विरह का दुःख नहीं सहा जा सकता। कहा भी गया है—

"इस संसार में एक मृगनयनी ही सार है—जिसके अभाव में समस्त वैभव ही असार है।"

ललितांगदेव की इस वेदनापूर्ण उक्ति को सुनकर ईशानेन्द्र के सामानिक

देव दृढ़धर्मा दुःखित हो गए। फिर अवधिज्ञान प्रयोग कर वे बोले—"आपकी प्रिया इस समय कहाँ है ज्ञात हो गया है अतः धैर्यधारण कर सुनें :

"मर्त्य लोक के धातकी खण्ड के पूर्व विदेह में नन्दी नामक एक ग्राम है। वहाँ नागिल नामक एक दरिद्र गृहस्थ वास करता है। पेट भरने के लिए भूत की तरह वह सारा दिन फिरता रहता है फिर भी पेट नहीं भर पाता। भूख लेकर ही सोता है, भूख लेकर ही उठता है। दरिद्र की क्षुधा की भाँति नागश्री नामक उसकी एक पत्नी है जिसे अभागिनों की प्रमुखा बोला जाता है। दाद पर विष-फोड़े की भाँति उसके एक-एक कर छः कन्याएँ जन्मीं। ग्राम कुतियाओं की तरह वे बहुभोगी, कुत्सित और सभी के निन्दा की पात्र थीं। इस पर भी उसकी पत्नी गर्भवती हुई। ठीक ही तो कहा है—'प्रायः दरिद्र के घर ही बहु प्रसवा स्त्री देखी जाती है'।

"तब नागिल सोचने लगा—किस कर्म के फल से मनुष्यलोक में वास करने पर भी—मैं नरक यन्त्रणा भोग रहा हूँ? मेरे जन्म समय से ही जिसका प्रतिकार करना असम्भव है ऐसे दारिद्र ने मुझे इस प्रकार जीर्ण कर दिया जैसे कि कीट पेड़ के शरीर को जीर्ण कर देता है। प्रत्यक्ष अलक्ष्मी की भाँति, पूर्व जन्म के वैरी की भाँति, मूर्त्तिमान अशुभ-लक्षण-सी ये कन्याएँ मेरे दुःख का कारण हो गयी हैं। इसबार भी यदि कन्या ही जन्म तो इसी परिवार का परित्याग कर मैं विदेश गमन करूँगा।

"इस प्रकार सोचते-सोचते नागिल ने एक दिन सुना उसकी स्त्री ने फिर कन्या को ही जन्म दिया है तो यह बात उसके कानों को सूई की तरह बींध गयी। अधम वलद जिस प्रकार भार परित्याग कर भाग जाता है उसी प्रकार वह अपने परिवार का परित्याग का अन्यत्र चला गया। पति के विदेश गमन का संवाद प्रसव वेदना से पीड़ित नागश्री को घाव पर नमक छिड़कने की भाँति लगा। अतः दुःखिया नागश्री ने उस कन्या का कोई नाम नहीं रखा। इसीलिए लोग उसे निर्नामिका कहकर पुकारने लगे। नागश्री ने उसका भली-भाँति लालन-पालन नहीं किया फिर भी वह दिन-दिन बड़ी होने लगी। ठीक ही तो कहा है—'वज्राहत होने पर भी यदि आयु रहती है तो उसकी मृत्यु नहीं होती।' उस अभागिन माँ के दुःख का कारण बनकर दूसरे के घर छुट-पुट काम कर किसी प्रकार वह अपना दिन व्यतीत करने लगी।

"एक दिन उसने किसी धनी के लड़के के हाथ में मोदक देखा। उसने भी मोदक माँगा। उसकी माँ क्रोध से दाँत पीसते-पीसते बोली—'तेरा क्या बाप

हैं जो तू मोदक खाना चाह रही है ? यदि मोदक खाने का इतना ही शौक है सो रस्सी लेकर अम्बर तिलक पहाड़ पर जा और वहाँ से लकड़ी काटकर ला।'

"माँ की अग्निकुण्ड-सी ज्वालामयी वाणी सुनकर निर्नामिका रस्सी लेकर रोती-रोती अम्बर तिलक पहाड़ की ओर चली। उस समय उसी पर्वत शिखर पर एक रात्रि प्रतिमाधारी मुनि युगन्धर ने केवल ज्ञान प्राप्त किया था। इस उपलक्ष में देवतागण उनका केवलज्ञान समारोह मनाने के लिए एकत्रित हुए थे। यह समाचार विदित होते ही निकटवर्ती ग्राम और नगर के लोग भी पर्वत शिखर की ओर जाने लगे। विभिन्न प्रकार के वस्त्रालंकारों से भूषित नर-नारियों को जाते देखकर निर्नामिका विस्मित होकर चित्र लिखित-सी उनकी ओर देखती रही। जब उसे उनसे पर्वत शिखर पर जाने का कारण मालूम हुआ तो वह भी दुःख भार की भाँति सिर के काष्ठ भार को पटक कर पर्वत शिखर पर चढ़ गयी। कारण तीर्थ तो सबके लिए ही समान है। उसने मुनि के चरण कमलों को कल्पवृक्ष मानकर पुलकित चित्त से उनको वन्दन और नमस्कार किया। ठीक ही कहा है—'बुद्धि भाग्य के अनुरूप ही हो जाती है'।

"महामुनि ने तब गम्भीर स्वर में लोक हितकारी और आनन्दकारी धर्मोपदेश दिया।

"कच्चे सूत से बुने हुए पलंग पर सोने वाला मनुष्य जिस प्रकार धरती पर गिर पड़ता है उसी प्रकार विषय सेवनकारी मनुष्य भी संसार रूपी धरती पर आ गिरता है। संसार में पुत्र-मित्र और पत्नी आदि का समागम (पन्थशाला में) एक रात्रि के लिए मिले पथिकों के स्नेह समागम की भाँति है। चौरासी लक्ष योनियों में परिभ्रमणकारी जीव जो अनन्त दुःख भोग करता है वह उसके स्व कर्मानुसार ही होता है।

"तब निर्नामिका ने करबद्ध होकर जिज्ञासा की—'हे भगवन्, राजा और दरिद्र में आप समभावी हैं इसीलिए मैं आपसे पूछती हूँ—आपने बताया संसार दुःखों का घर है किन्तु क्या मुझसे भी अधिक दुःखी इस संसार में कोई है ?'

"केवली भगवान ने प्रत्युत्तर दिया—'हे दुःखिनी बालिका, तुम्हें ऐसा क्या दुःख है ? तुमसे भी बहुत अधिक दुःखी जीव हैं। उनके विषय में बताता हूँ सुन—जो जीव अपने मन्द कर्म के लिए नरक गति प्राप्त करते हैं उनमें से अनेक का शरीर भेदन किया जाता है, अनेक का छेदन किया जाता है। अनेक की देह से मस्तक पृथक किया जाता है। अनेक जीव परमाधामी देवों द्वारा घानी में तिल की तरह पीसे जाते हैं, अनेक को काष्ठ की भाँति तीक्ष्ण आरों से चीरा जाता है। किसी को लोह पात्र की तरह हथौड़ी से पीटा जाता है, वे

असुर कइयों को शूल के बिछौने में सुलाते हैं, किसी को पत्थर पर कपड़े की तरह पटकते हैं और अनेकों को साग की तरह टुकड़े-टुकड़े काट डालते हैं। किन्तु, उनका शरीर वैक्रिय होने के कारण साथ-साथ जुड़ जाता है। इस तरह परमाधामी जीव पुनः उन्हें वही दुःख देते हैं। इस प्रकार दुःख भोग करते-करते वे करुण चीत्कार करते रहते हैं। वहाँ जो जल चाहते हैं उन्हें तप्त सीसे का रस पीने के लिए देते हैं जो छाया चाहते हैं उन्हें असिपत्र वृक्ष के नीचे बैठाया जाता है। वे पूर्व कर्म को स्मरण करते-करते एक मुहूर्त के लिए भी दुःख से रहित नहीं होते। हे वत्सा, उस नपुंसक नारकीय जीवों का जो दुःख है उसका वर्णन ही मनुष्य को कँपा देता है।

"इन समस्त नारकों की बात तो दूर रही ये जितने भी जलचर, स्थलचर और खेचर जीव हैं उन्हें भी हम पूर्व कर्मानुसार नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए देखते हैं। जलचर जीवों में कुछ जलचर जीव अन्य जलचर जीव का भक्षण करते हैं, अन्य को धीवर जल में आबद्ध कर लेता है। कुछ वक के भक्ष्य बन जाते हैं। चमड़े के लिए मनुष्य उनका चमड़ा उतारता है, मांस के लिए कुछ भोजन विलासीगण उन्हें भूँजते हैं और चर्बी के लिए पकाते हैं।

"स्थलचर जीव में मांस की आशा से बलवान, सिंहादि दुर्बल हरिणादि की हत्या करते हैं, शिकार करने वाले मांस के लिए अथवा मात्र शिकार के आनन्द के लिए ही उनका वध करते हैं। बलद आदि पशुगण क्षुधा, पिपासा, शीत, ग्रीष्म सहन करते हुए बहुत भार वहन करते हैं और कशा, अंकुश आदि का आघात सहन करते हैं।

"नभचर जीवों में तीतर, तोता, कबूतर आदि पक्षियों को मांस भोजी बाज, गिद्ध, सिंचान आदि पक्षी पकड़ कर खा जाते हैं। पक्षी पकड़ने वाले विभिन्न प्रकार से उन्हें पकड़ते हैं और तरह-तरह से निर्यातन करते हैं, हत्या करते हैं। तिर्यंक पक्षियों को शस्त्रादि जल आदि का भी भय रहता है। पूर्व कर्मों के बन्धन एवं उनके विपाक को टाला नहीं जा सकता।

"जो जीव मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं उनमें अनेक जन्म से ही अन्धे, बहरे, पंगु, खंज और कुष्ठ रोगग्रस्त होते हैं, अनेक चोर और परस्त्रीगामी बनकर दण्डित होते हैं—नारक जीवों की भाँति दुःख भोग करते हैं। अनेक नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होकर, अपने पुत्रों द्वारा उपेक्षित होते हैं। नौकर क्रीतदासी की भाँति अनेक बिकते हैं, खच्चर की भाँति मालिक द्वारा दिए दण्ड को पाते हैं, अपमानित होते हैं। अनेक भार वहन करते हैं, क्षुत् पिपासा का दुःख सहन करते हैं।

"परस्पर झगड़ा करके हार जाने पर भी अपने स्वामी के अधीन रहने के कारण देवता भी सदा दुःखी रहते हैं। स्वभाव से भयंकर और अपार समुद्र में जिस प्रकार अपार जल-जन्तु हैं उसी प्रकार संसार रूपी समुद्र में दुःख रूपी अपार जल-जन्तु है। भूत-प्रेत के स्थान में जिस प्रकार मंत्राक्षर रक्षक है उसी प्रकार जिनोपदिष्ट धर्म संसार रूपी दुःख से हमारी रक्षा करता है। अत्यधिक भार से पोत जैसे समुद्र में डूब जाता है उसी प्रकार हिंसा रूप भार से जीव नरक रूप समुद्र में डूब जाता है। इसीलिए हिंसा करना कभी भी उचित नहीं है। मिथ्या का सर्वदा परित्याग करना ही उचित है। कारण मिथ्या भाषण से जीव संसार में इस प्रकार भ्रमित होता है जैसे चक्करदार हवा में तृण। चोरी भी नहीं करनी चाहिए। स्वामी की अनुमति के बिना कभी कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। कारण चौर्य कर्म के द्वारा वस्तु अपहरणकारी उसी प्रकार कष्ट पाता है जिस प्रकार बिच्छू वृक्ष स्पर्शकारी मनुष्य खुजलाते-खुजलाते कष्ट पाता है। अब्रह्मचर्य (संभोग सुख) सर्वदा परिहार करना उचित है। कारण ब्रह्मचर्यहीन उसी प्रकार नरक में जाता है जिस प्रकार आरक्षी दुष्कृतकारी को ले जाता है। परिग्रह संचित करना भी उचित नहीं है। कारण अत्यन्त भार से बलीवर्द जिस प्रकार कीचड़ में अटक जाता है उसी प्रकार परिग्रहकारी परिग्रह भार से दुःख सागर में निमग्न हो जाता है। जो हिंसादि पाँच अव्रतों का सामान्य रूप से भी परित्याग करता है वह उत्तरोत्तर कल्याण सम्पत्ति का पात्र बनता है।"

[क्रमशः

जम्बुकुमार

पूरणचन्द सामसुखा

उस काल और उस समय में राजगृह नामक एक नगर था। उस नगर में ऋषभदत्त नामक एक धनवान श्रेष्ठी रहते थे। उनकी स्त्री धारिणीदेवी के गर्भ से जम्बुकुमार नामक एक पुत्र पैदा हुआ। जम्बुकुमार श्रेष्ठी का एकमात्र लड़का था। बचपन में उन्हें धनी श्रेष्ठी-पुत्र की भाँति उपयुक्त शिक्षा मिली थी। विभिन्न विद्या में पारंगत होकर वे युवावस्था को प्राप्त हुए। यद्यपि उन्हें सर्व प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं, किन्तु उनका मन सांसारिक सुखों तथा विषय-वासनाओं से विरक्त रहता था।

उस समय निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य पंचम गणधर श्री सुधर्म जो महावीर स्वामी से दीक्षित थे, राजगृह में आकर रहने लगे। जम्बुकुमार आचार्य से मिलकर उनके उपदेशों से प्रभावित होने लगे। जम्बुकुमार के माता-पिता भयभीत हो गये। वे अपने एकमात्र पुत्र के गृह-त्याग की आशंका से विचलित हो उठे और उनको रोकने का उपाय सोचने लगे। अपने पुत्र को वैराग्य से बचानेके लिये उनलोगों ने जम्बुकुमारका विवाह नगर के आठ धनवान श्रेष्ठियों की आठ सुन्दरी, शिक्षिता एवं उद्गत-यौवना कन्याओं के साथ कर दिया। विवाह के पहले ही उनलोगों ने कन्याओं के माता-पिता से अपने लड़के के वैराग्य के विषय में कह दिया था कि यदि कन्यायें अपने प्रभाव से लड़के की उदासीनता नष्ट न कर पायीं तो हमें कोई दोषी न कहे।

जम्बुकुमार से आठों कन्याओं का विवाह एक साथ ही हो गया। विवाहोपरान्त कन्याएँ अपने-अपने पिता के घर से आठ-आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्रा-दहेज के रूप में ले आईं और जम्बुकुमार के समक्ष प्रदर्शन किया। कन्याओं का असाधारण सौन्दर्य, यौवनोद्भाषित कमनीय अङ्ग-प्रत्यङ्ग, नयनाभिराम रूपसज्जा किसी भी युवक का क्षणमात्र में ही मन हरण कर लेती, किन्तु प्रकृत-वैराग्य से सिंचित मन वाले जम्बुकुमार युवतियों के कटाक्ष, सौन्दर्य तथा प्रचुर धनराशि की चकाचौंध से बिन्दुमात्र भी मोहग्रस्त न हुए। उन्होंने आचार्य श्री सुधर्म द्वारा स्त्री-जाति के अंगस्पर्श न करने का कठोर व्रत धारण कर लिया था। वे उससे विस्मृत न हुए, बल्कि धीर स्थिर होकर संसार की अनित्यता की चिन्ता करने लगे तथा निस्तब्ध होकर बैठ गये।

निस्तब्धता भंगकर जम्बुकुमार ने पत्नियों से कहा—"मेरे जीवन में कल जो घटना घटी थी, उसे मैं तुमलोगों से कहता हूँ। कल जब मैं बाहर से नगर को लौट रहा था, तब मैंने देखा कि एक स्थान पर राजकुमार लोहे के गोलक फेंक-फेंक कर अपनी शक्ति की परीक्षा कर रहे हैं। अचानक एक भारी गोलक मेरे सामने आकर गिरा। मैं थोड़े-से के लिए बच गया। यदि थोड़ा आगे और बढ़ा होता तो गोलक मेरे माथे पर गिरता और मेरी मृत्यु हो जाती। तत्पश्चात् मैं जीवन को क्षणभंगुर समझकर श्री सुधर्म स्वामी के पास लौट गया और प्रतिज्ञा की कि जबतक जीवन है, उसका सदुपयोग करूँगा। विवाह करने की मेरी सम्पूर्ण अनिच्छा थी, परन्तु मुझे माता-पिता के आग्रह से बाध्य होकर विवाह करना पड़ा।"

पत्नियों में सर्व ज्येष्ठा समुद्रश्री बोल उठी—"उस घटना से पता चलता है कि देवानुप्रिय ने दीर्घायु होकर जीवन-सुख स्वच्छन्दता से भोग करने के लिये जन्म लिया है।"

समुद्रश्री की बातें सुनकर जम्बुकुमार ने कहा—"मैं मृत्यु तथा अपघात से अल्प मात्र भी नहीं डरता। मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि जबतक यह जीवन है और शरीर कर्मठ है तबतक इसका सदुपयोग कर आत्महित, परहित तथा विश्वहित करने का प्रयास करना चाहिये। दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवन को भोग-विलास में लिप्त रखकर नष्ट करना उचित नहीं है। जबसे सुधर्म स्वामी का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनका त्यागमय तथा विश्वहित में रत जीवन का आदर्श मेरे दृष्टि पथ में आया तबसे मैंने अपना लक्ष्य स्थिर कर लिया है। भोगविलास में किंचित्मात्र भी मेरी आसक्ति नहीं है। त्याग और वैराग्यमय जीवन के अमृत रस में अवगाहना करने की अभीप्सा मुझे व्याकुल कर रही है।"

समुद्रश्री ने कहा—"देवानुप्रिय का कहना तो ठीक है, किन्तु वक् नामक एक बुद्धिहीन कृषक की तरह कहीं पीछे परिताप न करना पड़े। देवानुप्रिय! क्या आपने वक् की कथा सुनी है?"

जम्बुकुमार ने कहा—"नहीं।"

तब समुद्रश्री कहने लगी—"वक् नामक एक कृषक था। उसके पास कुछ बीघे अनुर्वर जमीन थी, जिसमें कोदो की तरह का निकृष्ट धान पैदा होता था। उसे खाकर वह अपनी वृत्ति चलाता था। संयोगवश एक दिन वह अपने एक सम्बन्धी के यहाँ अन्य ग्राम में गया। उसके सम्बन्धी ने उसका स्वागत किया तथा गेहूँ की रोटी और गुड़ खाने के लिये दिया। वक् को ऐसा भोजन

करने का कभी अवसर नहीं मिला था, इसलिये उसने संतुष्ट होकर तृप्ति के साथ भोजन किया। उस खाद्य से वह इतना मोहित हो गया कि उसने अपने सम्बन्धी से इस उपज का नाम और नियम पूछ लिये। घर आकर उसने खेत में गेहूँ तथा ईख बोयी परन्तु अनुर्वर जमीन होने के कारण फसल उग न सकी और कोदो तो उसने बोया ही नहीं था। तब वह बुद्धिहीन कृषक अपने कार्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा तथा अनाहार के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार कहीं आप इस वर्तमान लोक के प्राप्त सुख-भोग का परित्याग कर परलोक के अधिकतर सुख भोग की लालसा में इहलोक व परलोक दोनों सुख से वञ्चित न रह जाएँ ?"

समुद्रश्री की बात सुनकर जम्बुकुमार हँसकर कहने लगे—"क्या तुमलोगों ने विन्ध्याचल के काक की कथा नहीं सुनी है, जो आहार में तीव्र लालसा के कारण पञ्चत्व को प्राप्त हुआ था। एक समय विन्ध्याचल के एक नदी तट पर एक हाथी मरा पड़ा था। एक कौवा आकर उसके ऊपर बैठ कर सुख से मांस खाने लगा व सोचने लगा कि इतने बड़े हाथी के मांस से मेरा आहार चिर-काल तक चलता रहेगा। इसी बीच नदी में भीषण बाढ़ आने के कारण नदी के दोनों किनारे प्लावित हो गये और हाथी समुद्र की ओर बह चला। कौवा खाने में इतना मग्न था कि वह कुछ भी समझ न सका। समुद्र में जब मगर आदि ने आकर हाथी को खींचकर जल में डुबा दिया तब कौवा समुद्र के मध्य आश्रयहीन होकर मर गया। इस प्रकार जो लोग विषय में तीव्र आसक्ति रखते हैं वे काक की तरह संसार समुद्र में डूब कर घोर दुःख एवं कष्ट के भागी होते हैं।"

इस प्रकार आठों युवतियों के साथ जम्बुकुमार का कथोपकथन चलते-चलते रात हो गई। उसी समय अचानक एक आदमी कुमार के पास आकर बैठ गया। कुमार उसे पहचान गये। वह आदमी पाँच सौ चोरों का सरदार था, जो प्रभव के नाम से विख्यात् था। विवाह की रात को विशेष दहेज आया है, ऐसा सोचकर उसने अपने कई अनुचरों के साथ जम्बुकुमार के मकान में गुप्त रूप से प्रवेश किया था। नव वधूओं के साथ जम्बुकुमार का आलाप सुनते-सुनते वह इतना तन्मय हो गया कि चोरी की बात एकदम भूल गया।

प्रभव क्षत्रियकुमार था। किसी दुर्व्यवहार के कारण वह घर से निकाल दिया गया था। घर से निष्काषित होने पर उसने तस्करवृत्ति ग्रहण कर ली थी। पाँच सौ तस्कर उसके साथ रहते थे। प्रभव के डर से सब लोग सर्वदा भयभीत रहा करते थे।

प्रभव को देखकर जम्बुकुमार ने कहा—"यह सब धन तुम अपनी इच्छा से ले जा सकते हो, कोई तुम्हें नहीं रोकेगा। इस धन में मेरी कोई आसक्ति नहीं है। कल सुबह तुम मुझे भिक्षापात्र लेकर नगर में भ्रमण करते हुए देखोगे।"

जम्बकुमार की बातें सुनकर प्रभव तीव्र वैराग्य से अभिभूत हो गया। उसने कहा—"जब आप इन धनसम्पत्तियों को तुच्छ समझकर परित्याग कर रहे हैं तो हम यद्यपि नीच कर्म करते हैं, तथापि इतने नीच नहीं है कि इस छोड़ी हुई सम्पत्ति को ग्रहण करें। आप लोगों में आपस में इतनी देर तक जो बातें होती रहीं, उन्हें मैंने गुप्त रूप से सुना है। आपके वैराग्य के प्रभाव से मेरे मन की मलिनता दूर हो गई है। आज से मैं इस घृणित कार्य का परित्याग कर रहा हूँ। आपके पवित्र स्पर्श से मेरे हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया है। मैं भी आपके साथ सुधर्म स्वामी से श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण करूँगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल जम्बुकुमार, उनके माता-पिता, उनकी आठों स्त्रियाँ तथा उन स्त्रियों के माता-पिता, प्रभव तथा उनके दल के पाँच सौ चोरों ने आचार्य सुधर्म स्वामी से दीक्षा ग्रहण की।

सुधर्म स्वामी के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् आर्य जम्बु स्वामी निर्ग्रन्थ संघ के प्रधान हुए। उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई एवं ८०[1] वर्ष की अवस्था में उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् आर्य प्रभवस्वामी संघ के प्रधान हुए।

जैन कोश साहित्य

नेमिचन्द्र जैन

[पूर्वानुवृत्ति]

इस पद्यमय कोश में कुल छः काण्ड हैं। प्रथम देवाधिदेव नाम का काण्ड है, इसमें ८६ पद्य है। द्वितीय देवकाण्ड है, इसमें २५० पद्य हैं। तृतीय मर्त्य-काण्ड में ५६८ पद्य, चतुर्थ भूमिकाण्ड में ४२३ पद्य, पंचम नारककाण्ड में ७ पद्य एवं षष्ठ सामान्य काण्ड में १७८ पद्य है। इस प्रकार कुल १५४२ श्लोक इस कोश में हैं। हेमचन्द्र ने आरम्भ में ही रूढ़, यौगिक और मिश्र शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखने की प्रतिज्ञा की है। उन्होंने बतलाया है—

व्युत्पत्ति रहिताः शब्दा रूढ़ा आखण्डलादयः।
योगो ऽन्वयः स तु गुण क्रिया सम्बन्ध संभवः॥
गुणतो नीलकण्ठाद्याः क्रियातः स्रष्टसन्निभाः।

व्युत्पत्तिरहित शब्द रूढ़ कहलाते हैं जैसे आखण्डल इत्यादि। जिन शब्दों के प्रकृति प्रत्यय में अर्थानुगमन होता है, वे यौगिक कहलाते हैं। यह योग, गुण, क्रिया और अन्य सम्बन्धों के कारण होता है। गुण के सम्बन्ध में कारण जिन शब्दों का व्यवहार होता है, वे नीलकण्ठ, शितिकंठ, कालकंठ प्रभृति हैं। क्रिया का योग जिन शब्दों में रहता है, वे शब्द स्रष्टा, विधाता आदि हैं।

इतर सम्बन्ध में स्वस्वामिभाव, जन्यजनकभाव, कार्यकारक भाव भोज्यभोजक भाव, पतिकलत्रभाव वाह्यवाहकभाव, ज्ञाति सम्बन्ध, आश्रया-श्रियिभाव एवं वध्यवधकभाव को ग्रहण किया गया है और इन्हीं सम्बन्धों के अनुसार पर्याय शब्दों का कथन किया है। इसके पश्चात् अन्यान्य व्युत्पत्तिजन्य पर्यायों का प्रतिपादन किया है।

इस कोश में निम्न मौलिकताएँ और भी उपलब्ध होती हैं। सबसे पहली मौलिकता तो यह है कि हेमचन्द्र ने भी धनंजय के समान शब्दयोग से अनेक पर्यायवाची शब्दों को बनाने का विधान किया है, किन्तु इस विधान में "कविरूढ़या ज्ञेयोदाहरणावली" के अनुसार उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया गया है, जो कवि-सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। जैसे पतिवाचक शब्दों से कान्ता, प्रियतमा, वधू, प्रणयिनी एवं निमा शब्दों को या इनके समान अन्य शब्दों को जोड़ देने से पतिवाचक शब्द बन जाते हैं। गौरी के पर्यायवाची बनाने के लिए शिवशब्द में उक्त शब्द जोड़ने पर शिवकान्ता, शिव प्रियतमा, शिव-

वधू, शिव प्रणयिनी आदि शब्द बनते हैं। निम का समानार्थक परिग्रह भी है, किन्तु जिस प्रकार शिवकान्ता शब्द ग्रहण किया जाता है, उस प्रकार शिव परिग्रह नहीं। अतः कवि सम्प्रदाय में यह शब्द ग्रहण नहीं किया गया है।

कलत्रवाची गौरी शब्द में वर, रमण प्रभृति शब्द जोड़ने पर गौरीवर गौरीरमण, गौरीश आदि शिववाचक शब्द बनते हैं, जिस प्रकार गौरीवर शब्द शिव का वाचक है, उस प्रकार गंगावर शब्द नहीं। यद्यपि कान्तावाची गंगाशब्द में वर शब्द जोड़कर पतिवाचक बन जाते हैं, तो भी कवि सम्प्रदाय में इस शब्द की प्रसिद्धि नहीं होने से यह शिव के अर्थ में ग्राह्य नहीं है। हेमचन्द्र ने अपनी वृत्ति में इन सारी विशेषताओं को बतलाया है तथा 'शेषाश्च' में और भी अनेक कोशगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरी मौलिकता इस कोश की यह है कि इसमें अनेक ऐसे शब्द आये हैं जो अन्य कोशों में नहीं मिलते। अमरकोश में सुन्दर के पर्यायवाची सुन्दरम्, रुचिरम्, चारू, सुषमम्, साधुः, शोभनम्, कान्तम्, मनोरमम्, रुच्यं, मनोज्ञं, मंजुः, मंजुलम् ये बारह शब्द आए हैं। हेम ने इसी सुन्दर के पर्यायवाची चारुः, हारिः, रुचिरं, मनोहरं, वल्गुः, कान्तं, अभिरामं, बन्धुरम्, वामम्, रुच्यं, शुषमम्, शोभनं, मंजुलम्, मंजुः, मनोरमम्, साधुः, रम्यम्, मनोरमम्, पेशलं, हृद्यं, काम्यं, कम्नं, कमनीयं,सौम्यं, मधुरं और प्रियं ये २६ शब्द बतलाये हैं। इतना ही नहीं हेम ने अपनी वृत्ति में 'लह' देशी शब्द को भी सौन्दर्यवाची ग्रहण किया है। इस प्रकार हेम ने एक ही शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों को ग्रहणकर अपने इस कोश को खूब समृद्धिशाली बनाया है। कुछ ऐसे नवीन शब्द भी इस कोश में आए हैं, जिनका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं है। गेहूँ के आटे के लिए समिता (३/६७), जूठन के लिए फेला[४] और पिण्डोलि (३/६०) बड़ी साली के लिए ज्येष्ठश्वसा और कुली, छोटी साली के लिए हाली, यन्त्रणी और केलिकुंचिका (३/२१८-२१९) एवं बहुसन्तानवाली माता के लिए कृमिला (३/२२२) शब्द आया है। इन शब्दों के प्रयोगों से अवगत होता है कि हेमचन्द्र का शब्द ज्ञान कितना विशाल था।

हेमचन्द्र ने अपने इस संस्कृत कोश में जिन शब्दों का संकलन किया है, उनपर प्राकृत अपभ्रंश और देशी भाषा के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव लक्षित होता है। अनेक शब्द तो आधुनिक भाषाओं में भी दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द उद्धृत किये जाते हैं—

[४] अमरकोश में भी जूठन के लिए फेला शब्द मिलता है।

(१) पोलिका (३/६२) गुजराती में पोणो, ब्रजभाषा में पोनी।
(२) मोदको लड्डुकश्च (शेष ३/६४)—हिन्दी में लड्डू, गुजराती में लाडु।
(३) चोटी (३/३३१)—हिन्दी चोटी, गुजराती चोणी।
(४) समौकन्दुकगेन्दुकौ (३/३५३)—हिन्दी में गेन्द, ब्रजभाषा में गेन्द।
(५) हेरिको गूढ़ पुरुषः (३/३६७)—ब्रजभाषा हेर या हेरना—देखना, गुजराती हेर।
(६) तरवारि (३/४४६)—ब्रजभाषा में तरवार, राजस्थानी में तलवार तथा गुजराती में तरवार।
(७) जंगलो निर्जलः (४/१६)—ब्रजभाषा में जंगल, हिन्दी में जंगल।
(८) सुरंगातु सन्धिलास्याद् गूढ़मार्गोभुवोऽन्तरे (३/५१)—ब्रजभाषा, हिन्दी तथा गुजराती तीनों में सुरंग।
(९) निश्रेणीत्वधिरोहणी (४/७८)—ब्रजभाषा नसेनी, गुजराती नीसरणी।
(१०) चालनीतितउ (४/८४)—ब्रजभाषा, राजस्थानी व गुजराती में चालनी, हिन्दी में चलनी या छलनी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हेमचन्द्र की शब्दावली देशीभाषा की ओर विशेष झुकी हुई है।

अभिधानचिन्तामणि एक सर्वांगपूर्ण कोश है। इसके अध्ययन से संस्कृत भाषा के पाण्डित्य के साथ-साथ भाषा के नये मोड़ की जानकारी भी प्राप्त हो सकती है।

अनेकार्थसंग्रहनाम कोश :

अभिधानचिन्तामणि में हेमचन्द्र ने एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द बतलाये है और इस कोश में एक शब्द के अनेक अर्थों का संकलन किया है। इसकी शैली भी अभिधानचिन्तामणि की ही है। इसमें सात काण्ड हैं। प्रथम एक स्वर काण्ड में १६० श्लोक, द्वितीय द्विस्वर काण्ड में ६०८॥ श्लोक, तृतीय त्रिस्वर काण्ड में ८१४॥ श्लोक, चतुर्थ चतुःस्वरकाण्ड में ३५९ श्लोक, पंचम पंचस्वरकाण्ड में ५७, षष्ठ षट्स्वरकाण्ड में ७ श्लोक एवं सप्तम अव्ययकाण्ड में ६८ श्लोक हैं। कुल १९३१ श्लोक हैं।

हेमचन्द्र के इस कोश का मेदिनीकोश और विश्वप्रकाश कोश पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

निघण्टुशेष :

यह वनस्पतिकोश है। इसमें भी छः काण्ड है। प्रथम वृक्षकाण्ड में १८१ श्लोक, द्वितीय गुल्मकाण्ड में १०५ श्लोक, तृतीय लताकाण्ड में

४४ श्लोक, चतुर्थ शाककाण्ड में ३४ श्लोक, पंचम तृणकाण्ड में १७ श्लोक और षष्ठ धान्यकाण्ड में १५ श्लोक हैं। समस्त निघण्टु में कुल ३९६ श्लोक हैं। इस कोश की वैद्यक शास्त्र के लिए अत्यधिक उपयोगिता है। अनेकार्थ संग्रह की टीका के आरम्भ में ही कहा गया है :

शास्त्राणिवीक्ष्य शतशो, धन्वन्तरि निर्मितं निघण्टुं च।
लिंगानुशासनानि च क्रियतेनेकार्थटीकेयम्॥

अर्थात् निघण्टु लिखने के समय हेमचन्द्र के समक्ष धन्वन्तरि निघण्टु, राजकोश निघण्टु, सरस्वती निघण्टु प्रभृति औषधिकोश विद्यमान थे। हेमचन्द्र ने इन सभी कोशों का मन्थन कर एक नया निघण्टु तैयार किया है। इस कोश को डाक्टर ब्युल्हर ने श्रेष्ठ वनस्पतिकोश (Botanical Dictionary) माना है।[५]

देशीनाममाला :

हेमचन्द्र का देशी शब्दों का यह शब्दकोश बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी है। इस कोश के आधार पर आधुनिक आर्यभाषाओं के शब्दों की सांगोपांग आत्म कहानी लिखी जा सकती है। प्राकृत भाषा का शब्द भण्डार तीन प्रकार के शब्दों से युक्त है—तत्सम्, तद्भव और देशी। तत्सम् से वे शब्द हैं, जिनकी ध्वनियाँ संस्कृत के समान ही रहती हैं, जिनमें किसी भी प्रकार का वर्ण-विकार उत्पन्न नहीं होता, जैसे, नीर, कंक, कंठ ताल, तीर, देवी आदि। जिन शब्दों को संस्कृत ध्वनियों में वर्णलोप, वर्णागम, वर्णविकार अथवा वर्ण परिवर्तन के द्वारा अवगत किया जाए, वे तद्भव कहलाते हैं, जैसे अग्र=अग्ग, इष्ट=इट्ठ, धर्म=धम्म, गज=गय, ध्यान=झाण, पश्चात्=पच्छा आदि जिन प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति-प्रकृति प्रत्यय विधान संभव न हो और जिनका अर्थ मात्र रूढ़ि पर अवलम्बित हो, ऐसे शब्दों को देश्य या देशी कहते हैं, जैसे—अगय=दैत्य, आकासिय=पर्याप्त, इराव=हस्ती, पलविल=धनाढ्य आदि। इस देशीनाममाला में इसी प्रकार के शब्दों का संकलन किया गया है।

जे लक्खणे ण सिद्धा ण पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु॥
ण य गउण लक्खणा सत्ति संभवा ते इह निबद्धा॥ १-३।
देसविसेससपसिद्धीइ भण्णमाणा अणंतया हुंति॥
तम्हा अणाइपाइअपयट्ठ भासाविसेसओ देसी॥

जो शब्द न तो व्याकरण से व्युत्पादित है और न संस्कृत कोशों में निबद्ध

---

[५] देखें—Buhler, Life of Hemacandracarya p. 37.

है, तथा लक्षणाशक्ति के द्वारा भी जिनका अर्थ प्रसिद्ध नहीं है, ऐसे शब्दों का संकलन इस देशीनाममाला में किया जा रहा है। देशी शब्दों से यहाँ महाराष्ट्र, विदर्भ, आभीर आदि प्रदेशों में प्रचलित शब्दों का संकलन भी नहीं समझना चाहिए। यतः देश-विदेश में प्रचलित शब्द अनन्त हैं अतः उनका संकलन संभव नहीं। अतएव अनादिकाल से प्रचलित प्राकृत भाषा के शब्द ही देशी शब्द हैं।

इस प्रकार हेमचन्द्र ने देशी शब्दों का आशय प्रकट कर अव्युत्पादित प्राकृत शब्दों के संकलन की प्रतिज्ञा की है। पर इसमें उपर्युक्त तीनों ही प्रकार के कुल ३९७८ शब्द संकलित हैं।[६]

तत्सम् शब्द १००+गर्भित तद्भव १८५०+संशययुक्त तद्भव ५२८+ अव्युत्पादित प्राकृत शब्द १५००=३९७८।

इस कोश में उदाहरण के लिए ऐसी अनेक गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं जिनमें मूल में प्रयुक्त शब्दों को उपस्थित किया गया है। इन गाथाओं का साहित्यिक महत्व भी कम नहीं है। कितनी ही गाथाओं में विरहिणियों की चित्तवृत्ति का सुन्दर अवलोकन किया गया है।[७]

वर्णक्रम से लिखे गये इस कोश में आठ अध्याय हैं और कुल ७८३ गाथाएँ हैं। धनपाल कवि की 'पाइअलच्छी नाममाला' प्राकृत के आरम्भिक अभ्यासियों के लिए है, किन्तु यह नाममाला प्रौढ़ विद्वानों के लिए भी उपयोगी है।

देशीनाममाला में मराठी[८], कन्नड़[९], गुजराती और ब्रजभाषा में

---

६ विशेष के लिए देखें—प्रो० मुरलीधर बनर्जी द्वारा सम्पादित देशीनाममाला का Intro.

७ विशेष के लिए देखें—प्रो० मुरलीधर बनर्जी द्वारा संपादित देशीनाममाला का Intro.

८ Dr. P. L. Vaidya, 'Observations on Hemacandra's Desinamamala', Annals of B.O.R.I., vol. VIII, Part I, April 1926.

९ Prof. A. N. Upadhye; 'Kanarese Words in Desi Texicons', Annals of B. O. R. I. vol. XIII, part III, July 1931, p. 260-273 तथा K. Amrit Rao, 'Dravidian Element in Prakrit', Ind. Ant., vol. XVIII, Feb. 1957.

प्रचलित अनेक शब्द मिलते हैं। अवधी भाषा में भी नाममाला में प्रयुक्त अनेक शब्द व्यवहृत हुए हैं। यहाँ थोड़े से शब्दों की तालिका दी जा रही है।

(१) उल्ली तथा उद्दाणा चुल्लीई १/८७—राजस्थानी चूल्हा, गुजराती चूलो।

(२) उत्थल्ला परिवर्तनम् १/९३—हिन्दी खड़ीबोली उथल, गुजराती उथल।

(३) उल्लुटं मिथ्या १/७९—ब्रजभाषा उलट, राजस्थानी उलटूं, गुजराती उलटुं।

(४) उडिदोमाषषान्यम् १/९८—ब्रजभाषा उड़द, भोजपुरी उरिद, खड़ीबोली उड़द, गुजराती उड़द और राजस्थानी उड़िद।

(५) ओड्ढनम् उत्तरीयम् १/१५५—खड़ीबोली, राजस्थानी और गुजराती में ओढ़नी।

(६) खड्डा खनिः २/६६—खड़ीबोली खाड़ी, भोजपुरी खड्दा, गुजराती खाड़ी, ब्रजभाषा खड्ढा, गड्ढा।

(७) खडक्की लघुद्वारम् २/७१—खड़ीबोली खिड़की, ब्रजभाषा खिड़की, भोजपुरी खिरकी।

(८) खट्टिको शौनिक २/७०—ब्रजभाषा में खटिक, भोजपुरी में खाटके, गुजराती में खाटकी।

(९) खाइया परिखा २/७३—खड़ीबोली में खाई, राजस्थानी, गुजराती और भोजपुरी में भी खाई प्रयुक्त होता है।

(१०) खलइयं रिक्तं २/७१—खाली। भोजपुरी, ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती में इसी अर्थ में प्रयुक्त है।

(११) छलिओ छइल्लो छप्पण्णो—इत्येते यथोऽपि विदग्धार्थाः ३/२४—ब्रजभाषा में छलिया धोखेबाज के अर्थ में, भोजपुरी में उस प्रेमी के अर्थ में जो प्रेमिका की वंचना करता है।

(१२) छल्लीत्वक् ३/२४—खड़ीबोली में छाल।

(१३) छड्डा विद्युत् ३/२४—खड़ीबोली में छटा, राजस्थानी में छडा।

(१४) छासी तक्रम् ३/२६—ब्रजभाषा, भोजपुरी और खड़ीबोली में छाछ।

(१५) छेंडी लघुरथ्या ३/३१—ब्रजभाषा में छेंड़ी शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(१६) छेलओ छागः ३/३२—भोजपुरी और ब्रजभाषा में छेर।

(१७) जोण्णलिआ जोवारी ३/५०—ब्रजभाषा में जुणरी, जुनरी, राजस्थानी और भोजपुरी में भी जुणरी और जुनरी प्रयुक्त होते हैं।

(१८) झड़ी निरन्तर वृष्टिः ३/५३—ब्रजभाषा, राजस्थानी और भोजपुरी इन तीनों भाषाओं में झड़ी शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है।

(१९) डाली शाखा ४/९—खड़ीबोली, ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती में डाली शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(२०) डोला शिविका—४/११ खड़ीबोली, राजस्थानी और गुजराती में भी इसी अर्थ में डोला।

(२१) ढेंका कूपतुला ४/१७—भोजपुरी में इसी अर्थ में ढेंका।

(२२) ढेंकी बलाका ४/१५—भोजपुरी में धान कूटने के लिए प्रयुक्त ढेंकी।

(२३) णहरी क्षुरिका ४/२०—ब्रजभाषा में नाखून काटनेवाली नहनी, भोजपुरी में नहरनी और खड़ीबोली में नेहरनी।

(२४) णीसणिआ निःश्रेणी। क प्रत्ययाभावे णीसणीत्यपि ४/४३—ब्रजभाषा में नसेनी शब्द इसी अर्थ में आया है।

कुछ ऐसे शब्द भी इस कोश में हैं, जिनके समकक्ष अन्य किसी भाषा में उन अर्थों की अभिव्यक्ति करने वाले शब्द नहीं मिलेंगे। उदाहरण के लिए चिच्चो (३/९) शब्द चिपटी या चपटी नाक के लिए, अज्झेली (१/७) शब्द दूध देने वाली गाय के लिए, जंगा (३/४०) गोचर भूमि (pasture land) के लिए, अण्णाणं (१/७) शब्द विवाह के समय वरपक्ष की ओर से वधू को दी जानेवाली भेंट के लिए, अंगुट्ठी (१/६) शब्द सिरगुत्थी के लिए और अनुवज्जिअ शब्द जिसकी सेवा शुश्रुषा की जाती है, उसके लिए आया है। प्राकृत भाषा के साथ अन्य प्रादेशिक भाषाओं और बोलियों के शब्दों को अवगत करने के लिए यह कोश बहुत उपयोगी है। अंगालिय शब्द ईख के उस टुकड़े के अर्थ में आया है, जो निस्सार रहता है। जहाँ ईख की पत्तियाँ लगी रहती हैं, यह हिस्सा पशुओं के चारे के काम में आता है। इस अंगालिय शब्द से राजस्थानी और भोजपुरी इन दोनों बोलियों में अंगोला या अंगेरी शब्द आया है। इस शब्द का अर्थ भी वही है, जो अंगालिय का है। हिन्दी के अनेक शब्दों का, जिनकी व्युत्पत्ति आज सन्दिग्ध है, इस देशीनाममाला के शब्दों से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।

विश्वलोचन कोश :

श्रीधरसेन ने इस कोश की रचना की है। इसका दूसरा नाम मुक्तावलि

कोश है। कोश की प्रशस्ति[१०] के अनुसार इनके गुरु का नाम मुनिसेन था, ये सेन संघ के आचार्य थे। इन्हें कवि और नैयायिक कहा गया है। श्रीधर सेन नाना शास्त्रों के पारगामी और बड़े-बड़े राजाओं द्वारा मान्य थे। सुन्दर गणि ने अपने धातु-रत्नाकर में विश्वलोचन कोश के उद्धरण दिए[११] हैं और धातु रत्नाकर का रचनाकाल ई० १६२४ है, अतः श्रीधर सेन का समय ई० १६२४ के पहले अवश्य है। विक्रमोर्वशीय पर रंगनाथ[१२] ने ई० १६५६ में टीका लिखी है। इस टीका में विश्वलोचन कोश का उल्लेख किया गया है। अतः यह सत्य है कि विश्वलोचन की रचना १६वीं शताब्दी के पूर्व हुई होगी। शैली की दृष्टि से विश्वलोचन कोश पर हेम, विश्व प्रकाश और मेदिनी इन तीनों कोशों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। विश्व प्रकाश का रचनाकाल ई० ११०५, मेदिनी का समय इसके कुछ वर्ष पश्चात् अर्थात् १२वीं शती का उत्तरार्द्ध और हेम का १२वीं शती का उत्तरार्द्ध है। अतः विश्वलोचन कोश का समय १३वीं शती का उत्तरार्द्ध या १४वीं का पूर्वार्ध मानना उचित होगा[१३]।

इस कोश में २४५३ श्लोक हैं। स्वरवर्ण और ककार आदि के वर्णक्रम से

---

[१०] सेनान्वये सकलतत्वसमर्पितश्री
श्रीमान्जायत् कविर्मुनिसेननामा।
आन्वीक्षिकी सकलशास्त्रमयी च विद्या,
यस्यावादपदवी न दवीयसी स्यात॥
तस्मादभूदखिल वाङ्मयपारदृश्वा—
विश्वासपात्रभवनीतलनायकानाम्।
श्रीश्रीधरः सकलसत्कविगुंफितत्व,
पियूषपानकृतनिर्जरभारतीयः॥
तस्यातिशायिनी कवेः पण्डितजागरूक,
धीलोचनस्य गुरुशासनलोचनस्य।
नानाकवीन्द्ररचितानभिधानकोशा—
नाकृष्य लोचनमिवायमदीपिकोशः॥—विश्वलोचन, निर्णयसागर, बम्बई।

[११] देखें—पिटर्सन द्वारा निर्मित सूची, भाग ५, पृ० १६२।

[१२] प्रो० चारूदेव शास्त्री द्वारा लिखित विक्रमोर्वशीय की भूमिका, पृ० २५।

[१३] समय निर्णय के लिए देखें—जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ४, किरण १, पृ० ६।

शब्दों का संकलन किया गया है। इस कोश की विशेषता के सम्बन्ध में इसके संपादक श्री नन्दलाल शर्मा ने लिखा है[१४] "संस्कृत में कई नानार्थ कोश हैं, परन्तु जहाँ तक हम जानते हैं, कोई भी इतना बड़ा और इतने अधिक अर्थों को बतलाने वाला नहीं है। इसमें एक-एक शब्द को जितने अर्थों का वाचक बतलाया है, दूसरों में प्रायः इससे कम ही बतलाया है। उदाहरण के लिए एक रूचक शब्द को लीजिए—जहाँ अमर में इसके चार व मेदिनी में दश अर्थ बतलाये गए हैं, वहाँ इसमें १२ अर्थ बतलाये गये हैं। यही इस कोश की विशेषता है।"

उपर्युक्त प्रसिद्ध कोश से साहित्य के अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थों की सूचना मिलती है जिनकी प्रतियाँ समक्ष न होने के कारण साधारण परिचय ही दिया जा सकता है।

एकाक्षर नाममाला नाम की चार रचनाएँ उपलब्ध हैं। एक कृति के रचयिता जिनदत्त सूरि के शिष्य अमरचन्द्र हैं, इसमें एक-एक अक्षर का वर्णमाला क्रम से अर्थ बतलाया गया है। दूसरी विश्वशम्भु द्वारा ११५ पद्यों में रचित है। तीसरी कृति राजेश्वर के शिष्य सुधाकैलाश द्वारा रचित है। इसमें केवल ५० पद्य है। वर्णमाला क्रम से एक-एक वर्ण का पृथक्-पृथक् अर्थ बतलाया गया है। चौथी कृति धनंजय के नाममाला के अमरकीर्ति कृत भाष्य के साथ प्रकाशित है। इसमें कुल १६ श्लोक हैं। रचना साधारण है, स्वरविशिष्ट एक-एक अक्षर का पृथक्-पृथक् अर्थ बतलाया गया है। यथा—"शं शुभे शातु शोभायां शी शयने शुनिशाकरे" अर्थात् 'शं' शुभ अर्थ, 'शा' शोभार्थ में, 'शी' शमन अर्थ में और 'शु' चन्द्रमा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन कोशों के अतिरिक्त पुरुषोत्तम देव कृत त्रिकाण्डशेष, हारावली और एकाक्षर कोश के भी उल्लेख मिलते है। ये रचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

राजचन्द्र का देश्यनिदेश-निघण्टु और विमलसूरि का देश्यशब्द समुच्चय भी महत्वपूर्ण है। सं० १६४० में विमलसूरि ने देशीनाममाला के शब्दों का सार लेकर अकारादिक्रम से देश्यशब्द समुच्चय की रचना की है। पुण्यरत्न सूरि का द्वयक्षरकोश, असगकवि का नानार्थकोश, रामचन्द्र का नानार्थ संग्रह एवं हर्षकीर्ति की नाममाला की गणना भी उपयोगी कोशों में की जा सकती है। तपागच्छ के आचार्य सूरचन्द्र के शिष्य भानुचन्द्र ने नामसंग्रह कोश की

---

१४ विश्वलोचन कोश, भाषाटीकाकार पं० नन्दलाल शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, जून, १६१२, प्रस्तावना, पृ० ५।

रचना की है। हर्षकीर्त्ति सूरि की लघुनाममाला भी भाषा और साहित्य के अध्येताओं के लिए उपयोगी है।

शब्द प्रभेद नाममाला या शब्द भेद प्रकाश की रचना बौद्धधर्मावलम्बी महेश्वर ने की है। इस कोश का नाम विश्व प्रकाश भी है। इसकी वृत्ति सं० १६५४ में जिनविमल ने लिखी है। यह खरतरगच्छ के आचार्य भानुकेस के शिष्य थे। साधुकीर्ति उपाध्याय के शिष्य साधु सुन्दरगणि ने शब्द रत्नाकर की रचना की है। इस कोश में छः काण्ड और १०११ श्लोक हैं। अभिधान चिन्तामणि के पूरक के रूप में संवत् १४३३ में जिनदेव सूरि ने शिलांच्छ-नाममाला की रचना १४० पद्यों में की है। इस रचना में अनेक प्रचलित शब्दों का संकलन किया गया है, जिनका अस्तित्व आज भी लोकभाषाओं की शब्दावली में मिलता है।

धनमित्र के नाम से एक निघण्टु की रचना भी मिलती है। अनेकार्थ नाम के एक कोश की सूचना मदन पराजय के कर्त्ता के नाम पर भी उपलब्ध होती है। इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त अमरकोश की कई जैन टीकाएं भी उपलब्ध हैं। अशधरा की अमरकोश की क्रिया-कलाप टीका महत्वपूर्ण है।

संस्कृत और प्राकृत भाषा के कोशों के अतिरिक्त जैनाचार्यों ने कन्नड़ हिन्दी आदि भाषाओं में भी कोशों की रचना की है। कवि बनारसी दास ने संवत् १६७० में विजयादशमी के दिन अपने मित्र नरोत्तम दास के अनुरोध से हिन्दी नाममाला की रचना की है। इस रचना का आधार महाकवि धनंजय की नाममाला है। पर इतना सत्य है कि यह नाममाला का पद्यबद्ध अनुवाद नहीं है। कवि ने अन्य कोश ग्रन्थों का अध्ययन कर इसे सर्वांगपूर्ण बनाने की चेष्टा की है। इस नाममाला में ३५० विषयों के नामों का सुन्दर संकलन किया गया है। उदाहरण के लिए दर्शन, ज्ञान और चारित्र के नाम उद्धृत किये जाते हैं।

दर्शन के पर्यायवाची—दरस विलोकनि देखनौं, अवलोकनि दृगचाल।
लखन दृष्टि निरखत जुवति, चितवति चाहहिं माल ॥४७।

ज्ञान के पर्यायवाची—ज्ञान बोध अवगम मनन जगत मान जगजान।
चारित्र के पर्यायवाची—संजम चारित आचरन चरवृत्त थिरवान ॥४८।

इस रचना में कुल १७५ पद्य हैं। हिन्दी के अध्यायियों के लिए इसका अध्ययन अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा।

जैन शब्दकोश-साहित्य की उपलब्धियाँ

जैनाचार्यों ने संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, हिन्दी प्रभृति विभिन्न भाषाओं में पर्यायवाची एवं अनेकार्थवाची कोशों की रचना कर उक्त भाषाओं के अध्ययन मार्ग को सुलभ बनाया है। प्राकृत और देशी भाषाओं के कोश तो एकमात्र जैनाचार्यों के ही हैं। कोश लिखने की परम्परा अब तक जैनों में चली आ रही है। इस शताब्दी में भी शतावधानी मुनि रत्नचन्द्रजी ने पाँच भागों में अर्धमागधी कोश और जैनागम शब्द संग्रह—अर्धमागधी गुजराती कोश की रचना की है। श्री राजेन्द्र सूरि का अभिधान राजेन्द्र नाम का वृहत्काय कोश सात बड़ी-बड़ी जिल्दों में पूर्ण हुआ है। इस कोश द्वारा जैनागम के पारिभाषिक शब्दों एवं ग्रन्थ खण्डों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्व० सेठ गोविन्ददास का पाइअ सद्द महण्णवो तो प्राकृत भाषा के विद्यार्थी और विद्वान दोनों के लिए अत्यधिक उपयोगी है तथा अपनी इसी उपयोगिता के कारण विद्वानों का कण्ठहार बना हुआ है।

बी० एल० चैतन्य और ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद ने बृहत् जैन शब्दार्णव नाम के कोश ग्रन्थों की रचना हिन्दी भाषा में की है। यह पारिभाषिक शब्दों की जानकारी के लिए बहुत उपयोगी है। इस कोश के केवल दो ही भाग प्रकाशित हो सके हैं। संक्षेप में जैन-कोश साहित्य की निम्न उपलब्धियाँ हैं—

१ जैन पारिभाषिक और आम्नाय सम्मत शब्दावली की जानकारी।
२ प्राकृत और देशी भाषा के शब्दों का अर्थबोध।
३ जैन परम्परा की पौराणिक, धार्मिक एवं सैद्धान्तिक मान्यताओं के विवरण।
४ नानार्थक कोषों द्वारा अनेकार्थ साहित्य में सृजन की प्रेरणा।
५ कोशों के भाष्य और वृत्तियों में प्रतिपादित व्युत्पत्तियों के द्वारा शब्दों के सांस्कृतिक इतिहास का संकेत।
६ भाषा की नयी और पुरानी प्रवृत्तियों का चयन कर तद्-तद् समय में बोलने वालों के मनोविश्लेषण की सामग्री उपस्थित करना।
७ शब्द तथा पदों के अनेकार्थों द्वारा अर्थपरिवर्तनों को उपस्थित कर भाषा-विज्ञान के अध्ययन की सामग्री रखना।
८ कोश साहित्य की अविच्छिन्न परम्परा का ज्ञान प्राप्त करना और परस्पर के अवदानों का अध्ययन एवं विश्लेषण।
९ शब्द सम्पत्ति की मनोरंजक जानकारी।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ॥ दिसम्बर १९८१

उपाध्याय श्री अमरमुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'ज्योति से ज्योति जले' (मुनिश्री रूपचन्द्र), 'निर्वाण दिवस ज्योति पर्व' (साध्वी श्री चेतना), 'महामानव समन्वयकार आचार्य काका कालेलकर' (गुलाबचन्द जैन), 'महान साधिका विचक्षण श्री जी' (मंजु चोपड़ा)।

जिनवाणी ॥ दिसम्बर १९८१

आचार्य श्री हस्तीमलजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'तमिल वेद तिरुकुरल में निहित जैन भावना (३)' (डा० इन्दरराज वेद), 'भव बंधनों से छुटकारा और मुक्ति की प्रक्रिया : (रतनलाल काठेर), 'नमस्कार मन्त्र' महिमा व विधि' (दीपचन्द सहलोत)।

जैन जगत ॥ दिसम्बर १९८१

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'विज्ञान आज के परिप्रेक्ष्य में' (मुनिश्री सुरेमल), 'नारी का भारतीय समाज में स्थान' (मुनिश्री विद्यानन्दजी), 'योगदृष्टि समुच्चय—योग अध्ययन' (मुनिश्री राकेश कुमार), 'Religion and Man' (D. C. Mehta)

तीर्थङ्कर ॥ दिसम्बर १९८१

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'बहुरूपिया' (सुरेश सरल), 'आत्मा का अप्रदेशत्व : समयसार के संदर्भ में' (डा० एम० पी० पटेरिया), 'प्रो० जी० आर० जैन : जिन्होंने जैन भौतिकी को अकूत/बेहिसाब दिया' (नेमीचन्द जैन), 'वर्तमान युग और जैन विश्वविद्यालयों की आवश्यकता' (डा० कमलेश कुमार जैन), 'बाल्मीकि रामायण और पउमचरिउ' (डा० छेल बिहारी गुप्त), 'समण सुत्तं चयनिका' (डा० कमलचन्द सोगानी)।

श्रमण ॥ दिसम्बर १९८१

इस अंक में है 'अपनी परमात्म शक्ति को पहचानो' (सौभाग्यमल जैन), 'ज्ञान भी सम्पदा है' (मुनिश्री रामकृष्ण), 'जैन धर्म में अहिंसा' (रामदेव राम)।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१. अतिमुक्त (२य संस्करण)— श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ८.००

२. श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ३.००

३. चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया ५.००

४. भगवान महावीर (एलबम्) १०.००

बांग्ला

१.	सातटी जैन तीर्थ —श्रीगणेश लालओयानी	३.००
२.	अतिमुक्त —श्रीगणेश लालओयानी	४.००
३.	श्रमण संस्कृतिर कविता —श्रीगणेश लालओयानी	३.००
४.	भगवान महावीर ओ जैन धर्म —श्रीपूरणचाँद श्यामसुखा	२.००

English

1. Bhagavati Sutra (Text with English Translation)
—Sri K. C. Lalwani

Vol. I (Satak 1-2)	40.00
Vol. II (Satak 3-6)	40.00
Vol. III (Satak 7-8)	50.00

2. The Temples of Satrunjaya
—James Burgess 50.00

3. Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha
tr. by Sri Ganesh Lalwani 1.50

4. Thus Sayeth Our Lord—Sri Ganesh Lalwani 1.50

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

Vol. V No. 9 : Titthayara : January 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001